**ओ३म्**

**‘आत्मा की उन्नति ही सच्ची जीवनोन्नति अन्यथा जीवन व्यर्थ’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

समस्त दृश्यमान जगत् वा संसार ईश्वर ने जीवात्मा की उन्नति अर्थात् अभ्युदय एवं अपवर्ग के लिए ही बनाया है। जीवात्मा क्या है और इसकी उन्नति का तात्पर्य क्या है, इस पर वैदिक ज्ञान को सम्मुख रख कर विचार करने से सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं। वैदिक मान्यताओं के अनुसार जीवात्मा एक सूक्ष्म, अनादि, नित्य, अनुत्पन्न, अणुमात्र, अदृश्य, अविनाशी, अजर, अमर, ज्ञानार्जन व कर्म जिसका स्वाभाव व प्रवृत्ति है, जो स्वतंत्रतापूर्वक कर्मों को करता है व उसके अनुरुप ईश्वरीय व्यवस्था से फल को प्राप्त करता है। ऐसी एक शाश्वत सत्ता है जिस जीवात्मा कहते हैं। हम मनुष्य जीवन में इस शरीर रूपी घर के निवासी हैं। हम ऐसे निवासी हैं जो जन्म से कुछ समय पूर्व ईश्वरीय व्यवस्था से माता के उदर स्थित गर्भ में आते हैं, कुछ समय बाद हमारा बाहर की दुनियां में आने पर जन्म हुआ कहा जाता है और आयु का भोग कर कालान्तर में हम शरीर से निकल जाते हैं जिसे हमारी मृत्यु कहा जाता है। जीवात्मा का शरीर से गहरा सम्बन्ध है। शरीर है तो जीवात्मा उसके द्वारा स्वयं के अस्तित्व की अनुभूति करने सहित अन्यों पर भी अपने शरीर व इसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के द्वारा प्रकट होता है।

ईश्वर ने यह जगत वा ब्रह्माण्ड बनाया है। इस जगत का उपादान कारण यद्यपि सूक्ष्म जड़ प्रकृति है तथा ईश्वर इसका निमित्त कारण है। संसार रचना में ईश्वर का उद्देश्य शाश्वत् जीवों को उनके पूर्व कल्प वा सृष्टि तक के अवशिष्ट कर्मों का यथायोग्य भोग अर्थात् सुख व दुःख रूपी फल प्रदान करना है। मनुष्य एवं अन्य योनियों में नाना प्रकार के जो शरीर दिखाई देते हैं उन में जीवात्मा अपने अपने पूर्व कर्मानुसार फल भोग के लिए ईश्वर द्वारा भेजे गये हैं। मनष्येतर सभी योनियां भोग योनियां हैं जबकि मनुष्य योनि कर्म व भोग अर्थात् उभय योनि है। मनुष्य योनि में मनुष्य पूर्व कर्मों का भोग भी करता है और इसके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक कर्मों को भी करता है। मनुष्यों को क्या कर्म करने हैं इसके लिए ईश्वर ने सृष्टि की आदि में वेदों का ज्ञान दिया था। कालान्तर में जब मनुष्यों को वेदों को समझने में कठिनाई हुई तो हमारे ऋषियों ने वेदों पर व्याख्यान के रूप में अनेक ग्रन्थों, दर्शन व उपनिषद आदि, का प्रणयन किया जो विगत सहस्रों वर्ष व इससे भी अधिक पुराने हैं। यद्यपि हमारा बहुत सा साहित्य विधर्मियों ने नष्ट कर दिया तथापि आज भी अनेक ग्रन्थ हमें प्राप्त हैं जिनसे हम मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं। वेदानुकूल किये जाने वाले कर्म व कर्तव्य पुण्य कर्म होते हैं और वेद विरुद्ध कर्म पाप कर्म होते हैं जिनका परिणाम दुःख के रूप में हमारे सामने आता है।

हमें यह भी ज्ञान होना चाहिये कि सभी योनियों वा शरीरों में मनुष्य का शरीर वा योनि उत्तम है। मनुष्य योनि एक प्रकार से दुःखों से मुक्ति का द्वार है। दुःखों से मुक्ति ज्ञान प्राप्ति व सद्कर्मों को करने से सम्भव है। इसका कारण है कि सद्कर्मों का फल सुख होता है। असद्कर्मों का फल दुःख होता है। अतः असद्कर्म त्याज्य व निषिद्ध हैं। असद्कर्म व सद्कर्मों का ज्ञान वेद ज्ञान से होता है, अतः मनुष्य योनि में रहकर वेदाध्ययन करना परमावश्यक है और यह मनुष्य का मुख्य कर्तव्य व परमधर्म है। वेदाध्ययन से सद-असद कर्मों सहित दुःखों से छूटने व मोक्ष प्राप्ति के साधनों का ज्ञान होता है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनि व योगी वेदाध्ययन व उसका आचरण ही किया करते थे और मोक्ष व आत्मोन्नति को प्राप्त करते थे। आज का युग पूर्व समय से कहीं अधिक सुविधाजनक है। आज हमारे पास करणीय कर्मों यथा सन्ध्योपासना, देव यज्ञ अग्निहोत्र, पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ एवं बलिवैश्वदेव यज्ञ सहित अनेकानेक अनुष्ठानों का संस्कृतेतर हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में ज्ञान व विधि दोनों उपलब्ध हैं जिसे पुस्तकों के माध्यम से घर में रहते हुए पढ़कर व दूरभाष आदि से विद्वानों से शंकाओं का समाधान कर सकते हैं और अपनी आत्नोन्नति सुनिश्चित कर सकते हैं। आत्मोन्नति का प्रमुख साधन योगाभ्यास व योग-ध्यान साधना सहित अग्निहोत्र यज्ञ व समग्र रूप में वेदाचरण ही है। हमें लगता है कि महर्षि दयानन्द ने साधना का जो सरल रूप सत्यार्थप्रकाश सहित अपने अनेकानेक ग्रन्थों में लिख कर प्रस्तुत किया है वह सुरल व सुबोध ज्ञान व साधन इससे पूर्व के मनुष्यों को प्राप्त नहीं थे। इसके लिए हम स्वयं का ही उदाहरण ले सकते हैं। हम न किसी गुरुकुल में जाकर पढ़े हैं और न किसी विद्वान संन्यासी व धर्मोपदेशक आचार्य की शरण में रहे हैं। हमने आर्यसमाज में अनेकानेक विद्वानों के उपदेशों को श्रवण करने, उनकी संगति करने के साथ ऋषि दयानन्द, आर्य विद्वानों व वेदादि साहित्य पर आर्य विद्वानों के हिन्दी भाष्यों व टीकाओं का अध्ययन किया जिससे हमें लगता है कि हम शास्त्र की सामान्य व किंचित गूढ़ बातों को समझ पाते हैं। आर्यसमाज में हमारे जैसे सहस्रों विद्वान व ऋषि भक्त अनुयायी हैं जो स्वाध्याय द्वारा आवश्यकता के अनुरूप ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इसका श्रेय यदि एक व्यक्ति को दिया जाये तो वह महर्षि दयानन्द जी महाराज व उनका साहित्य ही है। अतः महर्षि दयानन्द जी ने सभी मनुष्यों का आत्मोन्नति का कार्य सरल बना दिया है। यह आश्चर्य की बात है कि आज का मनुष्य अविद्या व अज्ञान में फंसा हुआ है। आध्यात्मिक ज्ञान की वह अपेक्षा ही नहीं करता जबकि यह सरलता से सुलभ है। यह स्थिति पहले कभी नहीं थी। अन्य जो मत-मतान्तर हैं वहां परा विद्या अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान शुद्ध रूप में उपलब्ध नहीं होता। अतः जीवनोन्नति व आत्मोन्नति के अभिलाषी मनुष्यों को आर्यसमाज की शरण में आकर विद्वानों के उपदेश श्रवण सहित वेदानुकूल सत्यार्थप्रकाश एवं अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये और साथ साथ वृहद यज्ञों एवं ध्यान व स्वाध्याय शिविरों आदि में भी भाग लेते रहना चाहिये। ऐसा करने से उनके आत्मज्ञान व ईश्वर विषयक ज्ञान में वृद्धि होगी और साथ ही साधना से आत्मा व मन उन्नति को प्राप्त होगा। असद् कर्मों के प्रति उपेक्षा भाव उत्पन्न होगा और सद् कर्मों में प्रीति उत्पन्न होगी। इसी को आत्मोन्नति कह सकते हैं।

जिस मनुष्य की आत्मोन्नति हो जाती है उसका जीवन स्वामी दयानन्द जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, पं. गणपति शर्मा, स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, आचार्य डा. रामनाथ वेदालंकार, स्वामी सत्यपति जी, स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती जी जैसा बन जाता है। वैदिक जीवन पद्धति पर चलने वाला मनुष्य स्वयं में सन्तुष्ट होने के साथ उसे अपने भविष्य व मृत्युपरान्त जीवन के प्रति भी पूर्ण सन्तुष्टि का भाव होता है। हमने देखा कि ऋषि दयानन्द जी ने जब अपने प्राणों का उत्सर्जन किया तो उन्होंने ईश्वरोपासना कर भाषा में ईश्वर की स्तुति की थी और स्वयं को ईश्वर इच्छा में समर्पित कर दिया था। उनके व्यवहार में मृत्यु के दुःख का कहीं किसी प्रकार का कोई भाव नहीं था। ऐसा ही हम पं. लेखराम जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी और पं. गुरुदत्त विद्यार्थी आदि विद्वानों के अन्तिम समय में भी देखते हैं। दूसरी तरह आज कल के अविद्याग्रस्त लोग जब मृत्यु के निकट होते हैं तो वह प्रायः दुःखी व सन्तप्त देखे जाते हैं। उन्होंने जो धन कमाया होता है वह उनके काम नहीं आता, जीवन में परोपकार व पात्र व्यक्तियों को दान आदि भी किया नहीं होता, धनोपार्जन में अनेक प्रकार से असत्य व छल-कपट का सहारा लिया होता है, अतः ऐसे मनुष्यों की आत्मा इस जीवन में भी उन्नत नहीं होती अतः ऐसेी निम्न व सामान्य स्थिति वाली आत्मा की परजन्म में उन्नति होने की संभावना नहीं होती।

आत्मान्नोति हेतु आत्मा व ईश्वर सहित संसार सं संबंधित वैदिक ज्ञान परम आवश्यक है जिसका सरलतम साधन सत्यार्थप्रकाश व ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों सहित वेद, दर्शन, उननिषदों आदि का अध्ययन है। यह ज्ञान आत्मोन्नति के साधक हैं। आत्मोन्नति होने पर मनुष्य असत्य कामों व व्यवहारों को छोड़ कर सद्कर्मों से धनोपार्जन करता है जिसमें उसे सफलता मिलती है और वह सभी प्रकार के अभावों से दूर हो जाता है। वह परमुखापेक्षी नहीं होता। पुरुषार्थ एवं स्वाभिमान व सद्कर्म ही उसकी पूंजी होते हैं। ऐसे कुछ लोग कई बार दूसरे लोगों के आर्थिक शोषण का शिकार हो जाते हैं। यह उनका प्रारब्ध या विवेक ज्ञान में कुछ कमी हो सकती है। यदि वह स्वतन्त्रतापूर्वक पूर्ण उत्साह व धार्मिक लोगों से सहयोग से कोई भी कार्य करें तो उसमें उन्हें सफलता मिल सकती है।

मनुष्य को आत्मोन्नति अवश्य करनी चाहिये जिससे उनका यह जीवन सुख व शान्ति के साथ व्यतीत हो व मृत्यु के बाद भी उनकी आत्मोन्नति व जीवनोन्नति में किन्हीं अपकर्मों के कारण कोई बाधा न आ सके। सत्याचरण, विद्या का धारण तथा वेदाचरण ही आत्मोन्नति व जीवनोन्नति के प्रमुख आधार व कारण हैं। जीवन में इनसे संयुक्त रहना चाहिये। इसी के साथ हम इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**